International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Special Issue on Advancing Multidisciplinary Research and Analysis -
Exploring Innovations | April 2024
Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

बस्तर के लोकगीतों में इतिहास: एक अध्ययन

डॉ. पुरोहित कुमार सोरी

सहायक प्राध्यापक–इतिहास, शासकीय गुण्डाधूर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोण्डागाँव (छ.ग.)

सारांष

बस्तर एक जनजातीय बाहुल्य क्षेत्र है जहां गोंड, मुरिया, माड़िया, भतरा, धुरवा, परजा, हल्बा जैसे अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं। इन सब में गोंड जनजाति की आबादी सर्वाधिक है, जिसकी अनेक उपषाखाएँ है, इन उपषाखाओं की अपनी स्वयं की सांस्कृतिक विषेषता है। सांस्कृतिक विषेषताओं में लोकगीत, लोकनृत्य, लोकगाथा एवं लोककला का समावेष होता है। इन जनजातियों के लोकगीतों में उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक परम्पराओं तथा मान्यताओं का वर्णन मिलता है। इसी क्रम में कुछ लोकगीत है जिसमें बस्तर के इतिहास का वर्णन प्राप्त होता है। इसे हम बस्तर का मौखिक इतिहास भी कह सकते हैं। यहाँ के जनजातियों की अपनी–अपनी बोली है, परन्तु अधिकांष क्षेत्रों में गोंडी तथा हल्बी का प्रयोग किया जाता है। बस्तर के इन बोलियों में हल्बी बोली का विषेष स्थान है क्योंकि इस बोली को सम्पर्क भाषा का स्थान प्राप्त है। जिसके कारण हल्बी बोली में हमें अधिकांष लोकगीत प्राप्त होते हैं। इन लोकगीतों के माध्यम से हमें उनके प्रेम–भाव, धार्मिक आस्था एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक परम्पराओं की जानकारी प्राप्त होती है। चूंकि बस्तर के इतिहास का अध्ययन करने के लिए साहित्य का अभाव है अतः हमें यहां की लोकगीतों में इतिहास का दर्षन होता है। वर्तमान में कुछ लेखकों तथा इतिहासकारों के द्वारा बस्तर के लोकगीत–संगीत तथा संस्कृति को लिपिबद्ध करने का कार्य किया जा रहा है जो कि बस्तर के इतिहास एवं वहां की सामाजिक–सांस्कृतिक परम्परा को जानने तथा समझने के लिए महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

प्रस्तावना : लोकगीत, लोक–साहित्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। लोकगीत को उसकी आत्मा कहा जाए तो कोई अतिष्योक्ति नहीं है। लोकगीत हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण के साक्षी होते है। डॉ. सम्पूर्णानंद के अनुसार–''लोकगीत केवल व्यक्तियों के सुख–दुःख की गाथा ही नहीं गाते, बल्कि लोकोल्लास ओर लोकोताप का भी अभिव्यंजन करते हैं।''[1] जॉर्ज हेरजाग के मतानुसार–''लोकगीत में उन समुदायों का काव्य और संगीत समाहित होता है जिनका साहित्य लेखन और मुद्रण से नहीं बल्कि मौखिक परम्परा से स्थायित्व प्राप्त करता है।''[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोकगीत स्वर–माधुर्य से युक्त लोक हृदय की वह सहज अभिव्यक्ति है जिसमें जीवन और संस्कृति की सम्पूर्ण व्याख्या, परम्परा एवं इतिहास एक साथ संचारित तथा प्रसारित होता है।

लोकगीत एवं लोकनृत्य का अटूट संबंध है यही कारण है कि ये दोनों एक साथ ही पाये जाते हैं। लोकगीतों की रचना तात्कालिन समय एवं परिस्थिति के अनुसार रचित होता है जो उस काल की विषेषताओं पर आधारित होती है। यह उस काल के लोगों की अभिव्यक्ति है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित एवं पल्लवित होती है और समय के साथ–साथ इसमें कुछ बदलाव भी आ जाता है। लोकगीतों की रचना का उद्देष्य मनोरंजन, षिक्षा, उपदेष, भक्ति तथा इतिहास को गीत–संगीत के माध्यम से वर्णन करना होता है। अतः इसके माध्यम से किसी क्षेत्र विषेष में रहने वाले लोग अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं।

बस्तर के लोकगीत–

बस्तर एक जनजातीय बाहुल्य क्षेत्र है जहाँ गोंड, मुरिया, माड़िया, भतरा, परजा, धुरवा, हल्बा जैसे अनेक जनजाति निवास करती हैं। इन जनजातियों का अपना–अपना लोकगीत व संगीत है जो उनकी स्वयं की पहचान को बनाए रखने में सहायक होती है। इनके लोकगीतों में इनका अपना मौखिक इतिहास व्यक्त होता है। परन्तु इनके इतिहास एवं परम्परा को लिपिबद्ध नहीं किया गया, इसी कारण इनके इतिहास से संबंधित कोई महत्वपूर्ण साहित्यिक साक्ष्य हमें प्राप्त नहीं होता। इनका सम्पूर्ण इतिहास मौखिक एवं वाचिक परम्परा का ही अंष है। वर्तमान में कुछ इतिहासकारों यथा वेरियर ऐल्विन, डॉ. हीरालाल शुक्ल, लाला जगदलपुरी, पं. केदारनाथ ठाकुर, डॉ. रामकुमार बेहार, डॉ. के. के. झा, डॉ. रमेन्द्रनाथ मिश्र, डॉ. भगवान सिंह वर्मा, डॉ. जे. आर. वर्ल्यानी आदि के द्वारा बस्तर के मौखिक एवं वाचिक परम्परागत इतिहास को लिपिबद्ध करने का कार्य किया गया है, जो हमारे लिए प्रेरणा एवं मार्ग दर्षन का कार्य करते हैं।

बस्तर के जनजातियों की सांस्कृतिक विरासत को इनके लोकगीत, लोकगाथा व लोकनृत्य के माध्यम से समझा जा सकता है। मुरिया जनजातियों के जितने भी पर्व एवं त्यौहार हैं उनमें अलग–अलग लोक गीत–संगीत एवं नृत्य की अवधारणा पायी जाती है। जैसे लिंगोपाटा, माओपाटा, ककसाड़ पाटा, घोटुल पाटा, कोलांग पाटा, मांदरी नाच, डिटोंग पाटा, छेरता आदि।[3] इन्हीं से संबंधित इनके लोकगीत है, जिनके माध्यम से हम इनके सांस्कृतिक इतिहास को समझ सकते हैं।

1 आस्था का प्रतीक लोकगीत–लिंगोपाटा :– घोटुल प्रथा मुरिया जनजाति की विषेषता है, जिसमें मुख्य रूप से लिंगो पेन अर्थात् देव की अराधना की जाती है। लिंगो पेन की अराधना में लोकगीत गाया जाता है–

रे रे लायो रे रे ला रे
रे रे लोयो रे रे ला रे रे ला रे
बार भाई लिंगो रा लायोर,
पिंडिग कमकांग निया रा लायोर,
डाय रा लिंगो डायू रा लिंगो।
पिंडिंग कमकांग येक्ति रा लिंगो।
.....
.....

अर्थ :– ओ बारह लिंगो भाइयों, ये तुम्हारे लिए हल्दी और आटा है। आओ, लिंगो, आ जाओ लिंगों, हल्दी और आटे से हम तुम्हें तिलक लगाते हैं।[4]

इस लोकगीत के माध्यम से बस्तर के आदिवासी अपनी आदिम संस्कृति के जनक लिंगों की अराधना करते हैं और उनके द्वारा स्थापित रीति–नीति, परम्परा और मान्यताओं का पालन करते हुए अगली पीढ़ी को संदेष देते हैं। उनके द्वारा स्थापित प्रथाओं का उल्लंघन आदिवासी समुदाय कभी नहीं करता और इस प्रकार वे अपनी ऐतिहासिक परंपरा की व्याख्या करते हैं।

2 आत्मा के अस्तित्व से संबंधित लोकगीत–माओपाटा :– माओपाटा लोकगीत एक शोकगीत है जिसमें आत्मा के आवागमन जैसे गूढ़ विषय का वर्णन किया गया है।

चेलो दादरो रोले, अइ अइ अई।
ओरू बोरू रजाल रे, ए ए ए।
सोरा धारू धरती रोए देवता।
नव खण्डू पिरधीर एके रे।
सिंगार मालोर दिपू रोए देवा।
दगाल हाय बालोर रे ऐले।।
.....
.....

अर्थ :– भाईयों–भाईयों आवो आवो। देखो यह कौन राजा है? देखो यह भला राजा है। जो आज संसार से उठ गया है। यह राजा कहां जाएगा। यह राजा सोलह परत धरती में नौखंड पृथ्वी में जाएगा। जहां सबका कल्याण होता है। सब चिरनिन्द्रा में सो जाते हैं और उनकी स्मृति में ऐला अर्थात् लकड़ी या पत्थर का चौकोना तखता लगाते हैं।[5]

उक्त गीत के माध्यम से आदिवासी समुदाय आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उसे अपने पेन अर्थात् देव समुदाय में सम्मिलित करते हैं। इस गीत के माध्यम से मृत आत्मा का स्मरण किया जाता है और उसकी यादों को संजोए रखने के लिए उसके प्रिय पशु–पक्षी, वाहन या वस्तु आदि का चित्रांकन कर उसके मठ में लगा दिया जाता है। इससे उक्त आत्मा की जानकारी प्राप्त होती है तथा उसके इतिहास को भी जाना जा सकता है।

3 कोलांग पर्व – कोलांग पर्व माड़िया, मुरिया जनजाति का एक विषेष पर्व है। जिसमें आसपास के सभी गांव वाले एक गांव में एकत्र होते हैं और इस उत्सव को मनाते हैं। इससे संबंधित लोकगीत है–

रे रे लोयो रे रे ला,
रे रे लोयो रेला रे,
नालुंग कोटुम बुमी जो–2
चारे कोटुम चौरस जो–2
बुमतर मालिक राजल जो–2
चौरस मालिक लिंगो जो–2
.....
.....

अर्थ :– चारों ओर का भूमि है, जो कोनों का ज्ञानी है। धरती का मालिक राजा है, ज्ञान का मालिक लिंगों है।[6] प्रस्तुत कोलांग लोकगीत के माध्यम से आदिवासी अपने अराध्य देव लिंगो की महिमा का वर्णन करते हैं।

इसी तरह आदिवासियों में प्रत्येक पर्व से संबंधित अनेक लोकगीत है जिनके माध्यम से वे अपने सांस्कृतिक धरोहर को पीढ़ी–दर–पीढ़ी संचारित करते आ रहे हैं। जैसे ककसाड़ गीत एवं नृत्य आगामी फसल के बीजा–रोपण से पूर्व मनाया जाता है। अर्थात् ग्रीष्मकाल की समाप्ति और वर्षा के प्रारंभ से पूर्व ककसाड़ पर्व मनाया जाता है। इसमें गांव के युवक–युवती शाम के समय चौक–चौराहे पर एकत्र होकर गोल घेरे में गीत गाते एवं नृत्य करते हैं। उसी प्रकार डिटोंग पाटा भी एक नृत्य है जिसे गेड़ी नृत्य भी कहा जाता है। गेड़ी बांस एवं लकड़ी की बनी होती है, जिसमें चढ़कर गांव के युवक–युवती डिटोंग गीतक गाते है और नृत्य करते हैं। बस्तर अंचल में श्रावण मास की हरेली अमावस्या से लेकर भादो मास की पूर्णिमा तक यह नृत्य किया जाता है।[7] ऐसी मान्यता है कि वर्षा काल में अनेक छोटे–छोटे जीव–जन्तु धरती पर विचरण करते हैं। जिनकी सुरक्षा एवं स्वयं की सुरक्षा के लिए गेड़ी बनाया जाता है। ताकि बारिष के कीचड़ एवं उसमें विचरण करने वाले जीव–जन्तु से बचा जा सके। यह उनकी प्रकृति के प्रति प्रेम एवं चेतना को अभिव्यक्त करता है।

4 ऐतिहासिक घटनाक्रम पर आधारित लोकगीत – इसके अतिरिक्त लोकगीतों में तात्कालीन राजनीतिक स्थिति का वर्णन भी प्राप्त होता है। जैसे–

इलो!! इलो!!
नेतानार चो डेबरी धुरवा चेघलो, चेघलो फाँसी
जमाय अंगरेज हरीक होला फुकला हुन मन बावंसी
गोरा राज चो पलटन इली दखली तेलिन घाटी
बंदूक गरजे, तुपक गरजे माटी चे होली टाटी
पंडरा–पंडरा मई साहेब, पंडरा–पंडरा घोड़ा।
इलो!! इलो!! हामचों गाएँ, हाते धरून कोड़ा।
.....
.....

अर्थ :– नेतानार का डेबरी धुरवा, फाँसी पर चढ़ गया। अंग्रेज सब खुष हुए और उन्होंने बंषी बजाई। गोरों की फौज तेलिनघाटी अर्थात् केषकाल घाट आई बंदूक व तोप की आवाज गरजी। सफेद–सफेद अर्थात् गोरे–गोरे साहब और सफेद–सफेद घोड़ा हमारे गाँव में आए, हाथ में लिए कोड़ा।[8]

उक्त गीत बस्तर में हुए सन् 1910 के भूमकाल आन्दोलन की नृषंसता को प्रदर्षित करता है। जिसमें बताया गया है कि अंग्रेजों ने गुण्डाधूर के सहयोगी डेबरी धुरवा को किस तरह फांसी दी और ग्रामीण जनों पर किस तरह के जुल्म ढहाये।

इसी तरह एक लोकगीत जिसमें गुण्डाधूर के द्वारा कई ब्रिटिष अधिकारी–कर्मचारी और व्यापारियों को मौत के घाट उतारे जाने का वर्णन हैं–

''गुण्डाधूर चो लड़ते बेरा,
खाँडा चो धार पड़तो बेरा,
मुँडी उपरे धड़ पड़ेसे।
लड़ई लडून सरतो बेरा,
लहू चो मारे टार धड़ेसे।
.....
.....

अर्थ :– गुण्डाधूर के लड़ते समय, खड्ग अर्थात् फरसा की धार ऐसे पड़ती है कि सर धड़ से अलग हो जाता है और लहू की मोटी धार बह चलती है।[9] यह उल्लेखनीय है कि गुण्डाधूर बस्तर में हुए 1910 ई. के भूमकाल आंदोलन के नेतृत्वकर्त्ता थे, जिनके साहस और वीरता की कहानी आज भी बस्तर में गुंजायमान है।

5 बस्तर की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक विषेषता से संबंधित लोकगीत : बस्तर के लोकगायक श्री लखेष्वर कुदराम का वो लोकगीत, जो बस्तर के जनजातियों की आस्था का सम्पूर्ण परिचय देता है–

बैला...डिला, बैलाडिला
मैं आय बस्तर जिला चो आदिवासी पिला
आया मोचो दंतेसिरी बुबा भैरम आय–2
भाई मोचो डंडकार बहिन इंद्रावती सुंदर मोचो
तुमके सरन सरन आय.....
मैं आय बस्तर जिला चो आदिवासी पिला
मैं आय बस्तर जिला चो आदिवासी पिला
बैला....डिला, बैलाडिला
मै आय बस्तर जिला चो आदिवासी पिला
.....
.....

अर्थ :– बैलाडिला की पहाड़ी बैल के डिल अर्थात् कुबड़ के समान है, मां मेरी दंतेष्वरी एवं बाबा भैरम है, भाई मेरे दण्डकार तथा बहन इंद्रावती नदी है। तुमको सादर प्रणाम है। मै हूँ बस्तर जिला का आदिवासी बच्चा।

इस हल्बी लोकगीत के माध्यम से लोकगीतकार श्री लखेष्वर कुदरामजी ने बस्तर की सभ्यता, संस्कृति, विरासत, ऐतिहासिक मान्यताओं तथा परम्पराओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस लोकगीत के माध्यम से बस्तर की भौगोलिक एवं धार्मिक इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। इस लोकगीत में दंतेष्वरी देवी, जो कि बस्तर के काकतीय राजवंष की कुलदेवी है, को सम्पूर्ण बस्तर अंचल की प्रधान देवी के रूप में वर्णित किया गया है। मां दंतेष्वरी देवी से संबंधित किदवंती से भी बस्तर का नामकरण हुआ है। आदिवासी अपने जल, जंगल और जमीन की पूजा–अराधना करते हैं, उसे देव तुल्य मानते है, इसी कारण जब उनका व्यवसायीकरण होता है तो वे उनका विरोध करते हैं। यद्यपि विकास के लिए उनका दोहन भी आवष्यक है परन्तु इसके साथ ही पर्यावरण का संरक्षण भी किया जाए।

निष्कर्ष :– इस प्रकार स्पष्ट है कि बस्तर की मुरिया जनजाति के लोकगीत एवं उनका मौखिक इतिहास हमें तात्कालिन परिस्थितियों को समझने में सहायक है। इन लोकगीतों एवं मौखिक इतिहास को एक सिरे से नकारा नहीं जा सकता। आज जरूरत इस बात की है कि इन लोकगीतों और मौखिक परम्पराओं का अनुसंधान कर उसमें से ऐतिहासिक तथ्य निकाला जाए, ताकि बस्तर का ऐतिहासिक अंधकार दूर हो सके। आदिवासियों के लोकमनीषा में जीवन के जो मूल्य तलाषे हैं, उनकी अन्तरंग अनुगूँजें और आत्मीय संस्पर्ष बस्तर के लोकगीतों में मिल जाते हैं। लोकगीत मानवीय चरित्र का लीलाभाव है, जो सहज घटित होता रहता है। लेकिन इस सहज लीला में आनंद के साथ–साथ इतिहास की व्याख्या भी छिपी हुई है। हमें उनके इस लोकगीत को वृहद दृष्टिकोण से समझना होगा। यह कहा जाता है कि किसी देष के इतिहास एवं संस्कृति को समझना हो तो उसके पारम्परिक लोकगीतों की धरोहर को समझना चाहिए। बस्तर में अनेक बोलियाँ हैं, जिनकी वाचिक परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। इन गीतों के माध्यम से हम आदिवासियों के इतिहास तथा वर्तमान के घटनाक्रम को समझने में सहायता प्राप्त होती है।

संदर्भ :

[1] नायडू, हनुमंत, छत्तीसगढ़ी लोक–गीतों का लोकतात्विक तथा मनोवैज्ञानिक अनुषीलन, विष्वभारती प्रकाषन, नागपुर, 2017, पृ. 22

[2] नायडू, हनुमंत, छत्तीसगढ़ी लोक–गीतों का लोकतात्विक तथा मनोवैज्ञानिक अनुषीलन, विष्वभारती प्रकाषन, नागपुर, 2017, पृ. 22

[3] गौड़, शरदचंद्र एवं कविता, बस्तर एक खोज, विष्वभारती प्रकाषन, नागपुर, 2012, पृ.

[4] वेरियर ऐल्विन, अनुवादक–प्रकाष परिहार एवं कविता वषिष्ठ, मुरिया और उनका घोटुल, राजकमल प्रकाषन, नई दिल्ली, 2014, पृ.

[5] चौरे, नारायण, आदिवासियों के घोटुल, विष्वभारती प्रकाषन नागपुर, 2010, पृ. 55

[6] हुपेण्डी, कोमल, लिंगो ना डाका, जनजातीय साहित्य सदन, कांकेर, 2014 पृ.

[7] महावर, निरंजन, लोकरंग : छत्तीसगढ़, राधाकृष्ण प्रकाषन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 36

[8] लाला जगदलपुरी, बस्तर : इतिहास एवं संस्कृति, मध्यप्रदेष हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1994, पृ. 31–32

[9] लाला जगदलपुरी, बस्तर लोक–कला–संस्कृति, विष्वभारती प्रकाषन, नागपुर, 2011, पृ. 129